International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 74-76

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(2): 74-76
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-01-2021
Accepted: 17-02-2021

वत्सला
शोध छात्रा
संस्कृत एवम् पालि विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
पंजाब, भारत

पुष्पेंद्र जोशी
शोध निर्देशक
संस्कृत एवम् पालि विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
पंजाब, भारत

Corresponding Author:
वत्सला
शोध छात्रा
संस्कृत एवम् पालि विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
पंजाब, भारत

''नैयायिकदृशा : प्रमाणविमर्श''

वत्सला और पुष्पेंद्र जोशी

सारांश
धर्म शास्त्र एवं इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किए जाने वाल ज्ञान की सामग्री जो हमारे सामने प्रकट होती है उसकी तार्किकता का ही प्राचीन नाम 'आन्वीक्षिका' है। नैयायिक उस सब को सत्य मानता है जो तर्क की कसौटी पर ठीक उतरता है। न्याय दर्शन ईश्वर को अनेक प्रकार से सिद्ध करता है। न्याय सूत्र के के प्रणेता 'गौतम' माने जाते हैं। न्याय शास्त्र को दो धाराओं में विभक्त किया गया है– प्रमेय प्रधान और प्रमाण प्रधान। जिन साधनों के द्वारा हमें ज्ञेय तत्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उन साधनों को ही 'न्याय' की संज्ञा दी गई है। न्याय दर्शन मानता है कि ईश्वर ने संसार को अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं अपितु प्राणियों के लिए बनाया है। ज्ञान के साधनों में प्रमाण का विशेष महत्व बताया गया है। न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष–अनुमान–उपमान एवं शब्द या आप्त प्रमाण ही न्याय दर्शन के प्रतिपादित विषय है। 'प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः' अर्थात् प्रमाणों द्वारा अर्थ का परीक्षण ही न्याय है। प्रमाणों के आधार पर किसी निर्णय पर पहुंचना न्याय कहलाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण–अनुमान–उपमान एवं शब्द प्रमाण के विषय में न्याय दर्शन ज्ञान की प्राप्ति होती है। न्याय दर्शन ने सत्य मिथ्या–अनुमान का निश्चय किया है। प्रमाण शक्ति से ईश्वर प्राणीधान एवं तत्व का ज्ञान प्राप्त होता है। न्याय की दृष्टि में प्रमाण की महत्वता को दर्शया जा रहा है।

कूट शब्दः नैयायिकदृशा, धर्म शास्त्र, आन्वीक्षिका

प्रस्तावना
मानव जीवन में दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव ने जब से विचार करना प्रारम्भ किया है, वह उसी प्रकार से अपने अनुभवों को एक स्थायी आकार देना प्रारम्भ करने लगा। मानव के अनुभवों ने स्थायी आकार को प्राप्त किया तथा वह आकार दर्शन रुप में परिवर्तित होने लगा। भारत में दर्शन एक ऐसी विद्या के नाम से जानी जाती है जिसके द्वारा 'तत्व' का ज्ञान हो सके। सत्य के ज्ञान की प्राप्ति को 'दर्शन' कहा गया है। ''यह सृष्टि अनादि है यह केवल मन की कल्पना मात्र न होकर वास्तविक है। अनादि प्रकृत्ति माया अथवा परमाणु इसे कहा गया है।''[1]
दर्शन से अभिप्राय देखना अर्थ में प्रयुक्त दृश धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर 'दर्शन' शब्द निष्पन्न होता है। [2] आचार्य पाणिनी के अनुसार 'ल्युट' प्रत्यय का प्रयोग भाव–करण–अधिकरण तीन अर्थ में होता है। [3] दर्शन शब्द का अर्थ –देखना, अर्थात् विद्या – ज्ञान– विमर्श आदि के किसी भी विषय को देखना या वस्तु को देखना, जान लेना। [4]
भारतीय दर्शन विषयक विचार धाराओं को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है।
1. आस्तिक दर्शन 2. नास्तिक दर्शन[5]
आस्तिक दर्शन में वेदों को मानने वाले दार्शनिक सम्मिलित होते हैं। नास्तिक दर्शन में वेदों को नहीं मानने वाले दार्शनिक सम्मिलित हैं। नास्तिक दर्शन में चार्वाक, जैन, बौध दार्शनिक हैं। आस्तिक दर्शन में पूर्वमीमांसा उत्तर मींमासा, सांरव्य, योग, न्याय, वैशेषिक छः दर्शनों की गणना की गई है।[6]
सभी दार्शनिकों ने स्व–स्व मतानुसार प्रमाण के विषय में बताया है। सम्भवतः प्राप्त होता है कि जिसके द्वारा सत्य का ज्ञान हो वही 'प्रमाण' कहलाता है। दार्शनिकों ने अपने अनुभव और विचार के अनुसार प्रमाण के विभिन्न भेद किए हैं।
पूर्व मींमासा वेदों पर आधारित है इस में जैमिनी ने तीन प्रमाण, प्रभाकर ने पांच प्रमाण तथा कुमारिल भट्ट ने छः प्रमाणों को स्वीकार किया है। [7]
वेदान्त दर्शन का आधार उपनिषद् है। यह ज्ञान काण्ड पर आधारित है वेदान्त दर्शन में 6 प्रमाण स्वीकार किए गए हैं। 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. उपमान 4. आगम 5. अर्थापति 6. अनुपलब्धि (अभाव) [8]

व्यक्त अव्यक्त एवं ज्ञ के भेदोपभेद की गणना से 25 संख्या वाले तत्वों को बताने वाले सांख्यकार केवल तीन प्रमाण स्वीकार करते हैं। प्रत्यक्ष–अनुमान–शब्द (आप्त)।[9]

'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' [10] 'प्रत्यक्ष–अनुमान–आगम ये तीन प्रमाण योग दर्शन मानता है।

वैशेषिक दर्शन केवल दो प्रमाण स्वीकार करते हैं।

1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान।

शब्दोपमान यो नैंव पृथक्प्रामाव्यमिष्यते
अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम्''[11]

न्याय दर्शन में चार प्रमाण माने गए हैं 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. उपमान 4. शब्द। [12]

न्याय दर्शन का भारतीय दर्शन परम्परा में अत्यन्त व्यापक एवं प्रसिद्ध स्थान है। सर्वप्रथम यदि कोई ज्ञाता न्याय शास्त्र को नहीं जानता था उसकी गणना प्रसिद्ध विद्वानों में नहीं की जाती थी। न्याय दर्शन में संस्कृत विद्या के सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बना लिया है।

नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्धिरनेन इति न्यायः। अर्थात् जिससे प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि हो वह न्याय है। नि+इण् धातु घञ् प्रत्यय से न्याय शब्द की सिद्धि होती है। न्याय का शाब्दिक अर्थ है किसी के भीतर जाना या विश्लेषणात्मक समीक्षा करना। [13]

न्याय दर्शन के प्रणेता गौतम माने जाते है। न्याय सूत्र में गौतम के 524 सूत्रों की संख्या है। जिसमें प्रमाण के विषय में बताया गया है। 'प्रमाकरणं प्रमाणं' अर्थात् प्रमा का करण प्रमाण है। 'प्रमाणं प्रमीयते अनेन इति प्रमाणं' अर्थात् जिससे यथार्थ का ज्ञान किया जाता है वह प्रमाण है। [14] न्याय शास्त्र में प्रमा के करण–साधकतम् प्रमुखतम कारण को प्रमाण मानते हैं इस सम्बन्ध में चार तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है प्रमाता–प्रमेय–प्रमाण–प्रमा। न्याय दर्शन में चार प्रमाणों के विषय में बताया है 'प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दाः प्रमाणानि'। [15]

'तत् प्रत्यक्ष ज्ञान करणं प्रत्यक्षम्'। अर्थात् प्रत्यक्ष का ज्ञान जो कराता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब मनुष्य किसी पदार्थ विशेष की ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा करता है तक कोई विश्वसनीय पुरुष उसे पदार्थ के विषय में बताता है। तब भी उसके भीतर एक अभिलाषा उसकी यथार्थता को अनुमान द्वारा विशेष लक्षण जामकर परखने की होती है किन्तु इतने में भी उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती जब तक वह स्वयं के नेत्रों से न देख ले। जब स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है तो उसकी इच्छा पूर्ति हो जाती है । वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्य साधन नहीं खोजता। [16] प्रत्यक्ष की परिभाषा आत्मा तथा मन के सम्पर्क को तथा मन व इन्द्रियों के सम्पर्क को स्वतः सिद्ध मान लेती है। 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमत्यपदेमत्याभ्रिचारि व्यवासात्मकं प्रत्यक्षं'। [17] इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न होने वाला ज्ञान जो शब्द से नहीं बताया जाता व्याभिचार रहित तथ निश्चयात्मक प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष को जानने के लिए षड्विध सन्निकर्ष के विषय में कहा गया है। [18]

''प्रत्यक्ष ज्ञान हेतुरिन्दि्रयार्थ सन्निकर्षः षड्विध''। [19]

1. संयोग सन्निकर्ष :– दृश्य मात्र घट को देखना।
2. संयुक्त समवाय :– गुण के साथ सम्पर्क।
3. संयुक्त समवेत समवाय :– गुण की विशेष जाति का सम्बन्ध
4. समवाय – शब्द रुपी गुण का ज्ञान
5. समवेत समवाय : – शब्द रुपी गुण की जाति विशेष का ज्ञान।
6. विशेषण विशेष्य भाव :– इसका वर्णन–भिन्न–2 प्रकार से होता है।

'घटाभावावद् भूतलम्' यहां भूमि प्रतिपाद्य पदार्थ है तथा घट का अभाव है। 'भूतले घटा भावोऽपि' भूमि पर घट का अभाव है। दूसरे प्रकार में विशेषण और विशेष्य के पारस्परिक सम्बन्ध उलट गए हैं। [20]

'त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्ट च' प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमितिकरण को अनुमान कहते हैं। यह तीन प्रकार का है 'पूर्ववत, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट। [21] अनुमान केवल इन्द्रिय द्वारा नहीं हो सकता। वह किसी ऐसे लिड्ग या साधन के ज्ञान पर निर्भर करता है जिससे अनुमीयमान वस्तु या साध्य का एक नियत सम्बन्ध रहता है तथा इस सम्बन्ध को 'व्याप्ति' कहते हैं। 'साहचर्यनियमो व्याप्तिः' अर्थात् अग्नि से धूम को अलग न कर पाना। [22] यत्र–यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचयोनियमो व्याप्तिः।' जहां–जहा धूम है वहां वहा अग्नि है।' अनुमानं द्विविध, स्वार्थ, परार्थञ्च। अनुमान दो प्रकार का है। स्वार्थ और परार्थ। [23]

जब व्यक्ति स्वयं अनुमेय (साध्य अग्नि आदि) का ज्ञान प्राप्त करता है यथा अनुमाता पर्वत पर धूम को देखकर स्वार्जित अनुभव से ''यत्र–यत्र धूमस्तत्र अग्निः'' यह जानता है कि पर्वत अग्नि वाला है। यद स्वार्थ अनुमिति हेतुक होता है।

''यतु एवंय धूमादग्निमनुमाय पर प्रतिपत्यर्थ पञ्चावयव वाक्यं प्रयुज्यते तत् परार्थानुमानम्।'' [24] जब स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरे को समझाने के लिए पञ्चावयव का प्रयोग होता है वह परार्थानुमान है। ''प्रतिज्ञा हेतूदारहरणोपनय–निमगनानि पञ्चावयवाः।'' [25] श्रोता को समझाने के लिए पांच अवयव वाक्यों का प्रयोग करता है।

'प्रसिद्धसाधर्म्यात साध्यसाधनमुपमानम्' जिससे प्रसिद्ध के सादृश्य ज्ञान से साध्य की सिद्धि हो वह उपमान प्रमाण कहलाता है। [26] जैसी गौ है वैसी गवय है इस उपमान के प्रयुक्त होने पर सादृश्य अर्थ को इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से प्राप्त करता है इसकी संज्ञा गवय शब्द है ऐसा संज्ञा–संज्ञि सम्बन्ध उपमान प्रमाण से जान लेता है। मुद्गस्ताथा मुद्गपर्णी यथा माषस्तथा माषयणी। इति उपमान।

'आप्तोपदेश शब्दः' [27] आप्त के उपदेश को शब्द प्रमाण कहते हैं। धर्म का साक्षात्कार करने वाला जैसे पदार्थ को देखा वैसे ही पदार्थ को कहने की इच्छा से प्रयुक्त हुआ वक्ता आप्त कहलाता है। पदार्थ का साक्षात करना आप्ति है और उससे जो प्रवृत होता है वह आप्त है। [28] आप्त पुरुषों के उपदेश से भी हमें अज्ञात विषयों के विषय में ज्ञान होता है जैसे राम, कृष्ण, अशोक, चन्द्रगुप्त आदि के विषय में प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं जानते हैं परन्तु ऐतिहासिकों ने अपने प्रतिपाद्य विषयों में लिखा है उसके द्वारा रामकृष्णादि का समय तथा उनकी कथाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

न्याय दर्शन अपनी विचारधारा की अद्भुत पद्धति के कारण ही उच्च तथा महान है। प्रमाण–विचार पर ही नैयायिकों का समग्र दार्शनिक मत आधारित है। न्याय दर्शन में प्रमाण तथा प्रमेय सम्बन्धित सभी निम्न तथा उच्च प्रश्नों का तर्क पूर्वक समाधान प्राप्त होता है। न्याय दर्शनकार चार प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं परन्तु अन्य दार्शनिकों के द्वारा स्वीकृत अर्थापति व अभाव आदि प्रमाणों को चार प्रमाणों से ही सिद्ध करते हैं। न्याय दर्शन प्राचीन काल से ही बहुत प्रतिष्ठा के साथ देखा जाता रहा है। मनु ने भी न्याय का समावेश श्रुति के अन्दर किया है। सन्नातन धर्म के प्रमुख पांच पाठ्य विषयों में न्याय की गणना की गई है। प्रत्यक्ष के यथार्थ ज्ञान के लिए दोष रहित नेत्र ध्यान संगत मानसिक व्यापार एवं विषय की योग्यता निकटता आदि संयुक्त स्वरुप से प्रमाण की उपलब्धि होती है। किन्तु शब्द प्रमाण में ज्ञान की प्रमाणता बोलने वाले को दोषरहितता से है। शास्त्र प्रमाण है क्योंकि वे ईश्वर के द्वारा कहे गए है। न्याय दर्शन की सबसे बड़ी देन इसकी समीक्षात्मक तथा वैज्ञानिक खोज की तर्क शैली है। न्याय शास्त्र में प्रतिपादित प्रमाण आदि की सूची में विचारकों को ऐसे साधन प्रदान किए हैं जिसके द्वारा सत्य–ज्ञान मिथ्या अनुमान का निश्चय भेद किया जा सकता है प्रमाण का अन्तिम निश्चय प्रमा द्वारा या सच्चे ज्ञान के द्वारा ही है जिससे सच्चा ज्ञान हो। वही प्रमाण है वेद प्रमाण है यह ईश्वर द्वारा कथित है।

संधर्व सूचि

1. सर्वपल्ली राधा कृष्णन, 1969 ''भारतीय दर्शन'' रायसीम प्रकाशन दिल्ली, पृ'181
2. वरदराज, 2006, 'लघुसिद्धान्त कौमदुी' चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 6571
3. पइपक
4. सदानन्द, ''वेदान्त सार'' 2017, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ सं 1
5. शास्त्री राकेश, 2017 वेदानासार, परिमल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 2
6. शास्त्री राकेश, पृष्ठ 2
7. चौधरी अर्कनाय 2012 ''तर्कभाषा जगदीश संस्कृत पुस्तकालय जयपुर, पृ 4
8. शास्त्री राकेश, 2017 पृष्ठ 4
9. चौधरी अर्कनाय 2012, पृ 6
10. त्रिपाठी, आनन्द प्रकाश, 2007 'सांख्ययोग' विश्वविद्यालय बुक हाऊस जयपुर, पृ. 96
11. ऋषि, उमांशकर, 2012 'सर्वदर्शन संगंह' चौखम्भा प्रकाशन
12. चौधरी अर्कनाय 2012 ''तर्कभाषा'' पृ 21
13. चौधरी अर्कनाय 2012 ''तर्कभाषा'', पृ 8
14. प्इपक, पृ 14
15. गुप्त, जे.के., 2012 'षड्दर्शन सूत्र संगंह' चौखम्भा सुरभारती पकाशन, वाराणसी, पृ 52
16. गौतम (व्या.) वाचस्पति, 'न्याय भाष्य' अध्याय–1, सूत्र संख्या–1 पृ 31
17. दास गुप्त, एस. एन., 'भारतीय दर्शन का इतिहास' भाग–3, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपूर, पृ 187
18. दास गुप्त, एस. एन., 'भारतीय दर्शन का इतिहास' भाग–3, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपूर, पृ 187
19. शास्त्री विश्वनाथ व्या. 1972 'तर्क संग्रह' भारतीय संस्कृत भवन, पंजाब, पृ 371
20. गुप्त दास, पृ 187
21. वाचस्यति मिश्र, ''न्याय दर्शन'', बौध भारती प्रकाशन, पृ 21
22. Ibid, P. 21
23. शास्त्री विश्वनाथ व्या. 1972 'तर्क संग्रह' भारतीय संस्कृत भवन जालन्धर पंजाब, पृ 41
24. शास्त्री विश्वनाथ व्या. 1972 'तर्क संग्रह' भारतीय संस्कृत भवन जालन्धर पंजाब, पृ 43
25. शास्त्री विश्वनाथ व्या. 1972 'तर्क संग्रह' भारतीय संस्कृत भवन जालन्धर पंजाब, पृ 44
26. वाहयायन, ''न्याय दर्शन'' बौध भारती प्रकाशन, पृ 24
27. Ibid
28. सुदर्शन व्या. 'न्याय भाष्यं' सुधी प्रकाशन, वाराणसी, पृ.23